**ओ३म्**

**‘संसार में ईश्वर और धर्म एक हैं’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 क्या ईश्वर और धर्म आज भी प्रासंगिक हैं अथवा यह बातें मध्यकालीन अज्ञान व अन्धविश्वास पर आधारित हैं? संसार में बहुत से नास्तिक हुए हैं, अब भी है, जिनके अपने-अपने मत भी हैं, वह ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें धर्म शब्द से ग्लानि व घृणा है। अब प्रश्न है कि यदि ईश्वर व धर्म हैं ही नहीं, तो फिर इन शब्दों की कब व किसने उत्पत्ति की? यदि ईश्वर को न माने तो फिर इस संसार की रचना व उत्पत्ति का कोई बुद्धिसंगत सिद्धान्त हमें पता होना चाहिये। क्या यह सृष्टि वा ब्रह्माण्ड बिना किसी ईश्वर के स्वतः बना है अथवा हमेशा से बना बनाया है। ऐसे अनेक प्रश्न हमारे सम्मुख आते हैं। **उनका जब विवेचन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि यह संसार स्वमेव अर्थात् बिना किसी सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान सत्ता के उत्पन्न नहीं हो सकता।** उत्तर केवल इस बात का दिया जाना है कि सूक्ष्म व सर्वव्यापक सत्ता हो सकती है और आंखों से दिखाई न देना विज्ञान के किसी नियम व सिद्धान्त के अन्तर्गत होता है जो कि सम्भव है असम्भव नहीं। हम संसार में भिन्न-भिन्न प्राणियों को देखते हैं। हमें उन प्राणियों के भौतिक शरीर ही दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें विद्यमान आत्मा वा चेतन सत्ता जिसके शरीर में होने पर शरीर जीवित रहता व अपने शरीर के अनुसार क्रियायें करता हैं, उस जीवात्मा की अनुपस्थित में शरीर अचेत व निष्क्रिय हो जाता है जिसे हम उस मनुष्य व प्राणी की मृत्यु होना कहते हैं, शरीर में विद्यमान यह आत्मा वा चेतन सत्ता किसी को दिखाई नहीं देती परन्तु सभी इसको मानते हैं। शरीरों में विद्यमान जीवात्मा एकदेशी व सूक्ष्म सत्ता है जो कि एक चींटी व हाथी के शरीर में एक जैसी होती है। अब यदि शरीरस्थ जीवात्मा दिखाई नहीं देती तो इससे भी सूक्ष्म जिसे सर्वातिसूक्ष्म कह सकते हैं, वह सत्ता जो सर्वव्यापक और चेतन हो, अवश्य हो सकती है जो होने पर भी दिखाई न दे, यह सम्भव है। उसका लक्षण व प्रमाण क्या है? इसका उत्तर भी हमें बुद्धि व विवेक तथा वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से अनेक प्रकार से मिलता है। यह निर्मित व रचित संसार उसी सत्ता की रचना है। बुद्धि व ज्ञानपूर्वक सप्रयोजन की गई रचना के किए रचनाकार व रचयिता का होना होना अपरिहार्य वा अनिवार्य है। हम संसार में बने अपनी आवश्यकता के भौतिक पदार्थों को देखते हैं तो ऐसा कोई पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होता कि जो स्वनिर्मित हो वा जिसे मनुष्य ने न बनाया हो। बाजार में सभी उपभोक्ता वस्तुए किसी न किसी उद्योग आदि में निर्मित होती हैं जिसमें प्रकृतिस्थ पदार्थों को मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग करके सहायक मशीनों व उपकरणों से बनाता है। इससे यह भी जाना जाता है कि रचनायें दो प्रकार की होती हैं। प्रथम मनुष्य कृत अर्थात् पौरूषेय और दूसरी ईश्वरकृत जिसे अपौरूषेय कहते हैं। यह सारी सृष्टि व इसके जल, वायु आदि पदार्थ तथा प्राणी एवं वनस्पति जगत अपौरूषेय सत्ता अर्थात् ईश्वर द्वारा बनाये गये पदार्थ हैं। ईश्वर द्वारा बनाई गई सृष्टि को देखकर हम ईश्वर का स्वरुप निर्धारित कर सकते हैं।

 हम देखते हैं कि इस प्रकृति वा सृष्टि का न कोई ओर है न छोर, अतः ईश्वर अनन्त सिद्ध होता है। ईश्वर इसलिए दिखाई नहीं देता कि वह सर्वातिसूक्ष्म है। रचना सदैव ज्ञानवान चेतन सत्ता द्वारा ही सम्भव होती है, अतः ईश्वर चेतन व सर्वज्ञ है। सुख व आनन्द से रहित वा दुःखी सत्ता किसी महनीय कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकती, अतः ईश्वर का आनन्दयुक्त होना भी ज्ञात होता है। यह ब्रह्माण्ड असीम है अतः ईश्वर भी असीम सिद्ध होता है। आकारवाली वस्तु वा सत्ता सीमित होती है अतः ईश्वर अनन्त होने से निराकार है। अल्प सत्ता अल्पज्ञ होती है और उसकी शक्ति भी सीमित होती है, अतः इस सृष्टि की रचना को देखकर ईश्वर सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ सिद्ध होता है। इस प्रकार विचार करते हुए ईश्वर का जो स्वरुप सम्मुख आता है वह वही है जो वेदों व वैदिक ग्रन्थों सहित महर्षि दयानन्द के वेदानुकूल साहित्य में वर्णित है। महर्षि दयानन्द के अनुसार **ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।** सभी मत व पन्थों में इससे मिलता जुलता ईश्वर का स्वरूप ही पाया जाता है। हां, अज्ञानतावश प्रायः सभी मतों में ईश्वर विषयक कुछ कल्पायें भी की गई हैं जो कि अज्ञानमूलक, निराधार तथा असत्य हैं। वेद ईश्वर को महानतम पुरुष जो कि अज्ञान व अन्धकार से रहित व सूर्य के समान प्रकाशमान वा आदित्य वर्ण वाला बताते हुए उसे इस चराचर जगत के कण-कण में व्याप्त वा विद्यमान बताते हैं। दर्शन ग्रन्थों में कहा गया है कि जिससे यह सृष्टि उत्पन्न होती है, चलती है, पालन होता है व अन्त में प्रलय होती है, उसे ईश्वर कहते हैं। इस प्रकार ईश्वर का इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान होना सिद्ध होता है।

 इससे पूर्व कि हम धर्म की चर्चा करें जीवात्मा के विषय में कुछ बातें जान लेना आवश्यक है। जीवात्मा तीन नित्य व अनादि पदार्थों ईश्वर, जीव व प्रकृति में से एक सत्ता है। यह तीनों ही सत्तायें अत्यन्त सूक्ष्म हैं परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से सूक्ष्म सत, रज व तम गुणों की साम्य अवस्था मूल प्रकृति है। इससे भी सूक्ष्म जीवात्मा है और इन दोनों से भी सूक्ष्म वा सर्वातिसूक्ष्म ईश्वर है। कोई भी पदार्थ न उत्पन्न किया जा सकता है और न ही किसी पदार्थ का नाश होता है। जीवात्मा व यह तीनों पदार्थ अविनाशी हैं। जीवात्मा ईश्वर की तरह से एक चेतन, अल्पज्ञ, एकदेशी, आनन्द से रहित वा आनन्द का अभिलाषी व सूक्ष्माकार पदार्थ है जिसका आकार एक अत्यन्त सूक्ष्म बिन्दुवत है। यह सृष्टि प्रवाह से अनादि है। इसी प्रकार यह जीवात्मा भी अनादि काल से कर्म-फल के बन्धनों में फंसी हुई है जो इसके बार-बार जन्म व मृत्यु के कारण बनते हैं। मनुष्य जन्म उभय योनि है और अन्य योनियां फल भोग योनियां। मनुष्य जन्म जब होता है कि जब पूर्व मनुष्य जन्म में इसके पाप व पुण्य बराबर व पुण्य अधिक होते हैं। मनुष्य जन्म लेकर मनुष्य ईश्वरोपासना व सदकर्म व धर्मपालन से ईश्वर का साक्षात्कार कर विवेक प्राप्त कर सकता है जिससे इसकी 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों के लिए जन्म मरण से मुक्ति हो जाती है। इसके बाद पुनः जन्म होता है और इसे सदाचार युक्त जीवन व्यतीत करना होता अन्यथा यह बन्धन में पड़कर मनुष्य व योनियों में जन्म मरण धारण करता रहता है। यही स्थिति हमारी व हम सब की है।

 अब धर्म के बारे में विचार करते हैं। दर्शन ग्रन्थों के अनुसार उन कर्मों का नाम धर्म है जिनसे मनुष्य को इस जीवन में सुख प्राप्त होता है और मरने पर मोक्ष की प्राप्ति हाती है। धर्म के अन्तर्गत मुख्य कर्म ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र यज्ञ, परोपकार, सेवा, देश भक्ति आदि वेद विहित सत्य कर्म आते हैं। **सृष्टि की आदि में रची गई मनुस्मृति में विधान है कि धर्म की जिज्ञासा व ज्ञान के लिए परम प्रमाण वेद हैं।** सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर प्रदत्त ज्ञान वेद के अनुसार कर्म धर्म व वेद निषिद्ध कर्म अधर्म कहलाते हैं। इसको यह भी कह सकते हैं कि सत्य ज्ञान से युक्त कर्म धर्म होते हैं और अज्ञान, अविद्या, अन्धविश्वास व दूसरों के अपकार आदि के कर्म अधर्म की श्रेणी में आते हैं। धर्म सुख का कारण होता है और अधर्म दुःख का कारण होता है। जो मनुष्य शुद्ध हृदय वाला होता है वह जब आरम्भ में कोई गलत काम करता है तो उसके हृदय में भय शंका व लज्जा उत्पन्न होती है। और यदि वह अच्छा काम करता है तो उसके हृदय व मन में उस कार्य के प्रति प्रेरणा, उत्साह व आनन्द की अनुभूति होती है। यह अनुभूतियां हृदय में विद्यमान सर्वान्तर्यामी ईश्वर की प्रेरणा से होते हैं। इस प्रमाण से ईश्वर का अस्तित्व व उसका आत्मा में व्यापक वा सर्वव्यापक होना सिद्ध होता है। यदि मनुष्य इन प्ररेणाओं के अनुरूप नहीं वर्तता है तो उसको यह अनुभूतियां होनी बन्द हो जाती हैं। यह सभी मनुष्यों का अनुभव होता है। आज कल संसार में धर्म के नाम पर अनेक मत-मतान्तर चल रहे हैं जिनकी मान्यताओं एवं सिद्धान्तों में परस्पर भिन्नतायें भी हैं। यह लोग अपनी मान्यताओं व सिद्धान्तों को सत्य की कसौटी पर नहीं कसते जैसे कि हमारे वैज्ञानिक करते हैं। इससे इन मतों में मिथ्याज्ञान की भरमार पाई जाती है। ऐसा भी देखा जाता है कि यह सब सत्य व असत्य का विचार किये बिना ही अपने-अपने मत का प्रचार करते हैं और दूसरों को भय, प्रलोभन व सेवा आदि के नाम पर धर्मान्तरण करने में प्रवृत्त होते हैं। इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है। वस्तुतः यह धर्म नहीं, मत हैं और इनके द्वारा ही मनुष्यों को नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं ऐसा महर्षि दयानन्द का विवकेपूर्ण आंकलन है। यदि इतने मत व धर्म न होते तो शायद विश्व में सुख व शान्ति होती और अतीत में लोग अकारण मृत्यु का ग्रास न बने होते। आजकल यह भी देखने को मिल रहा है कि धर्म एक प्रकार का व्यापार बन गया है। आम जनता को यथार्थ धर्म, उसकी मान्यताओं व सिद्धान्तों का ज्ञान तो होता नहीं है, अतः व चालाक व चतुर गुरुओं के व्यामोह व चक्र में सामान्य मनुष्य फंस जाते हैं और अपनी धन-सम्पत्ति उन्हें भेंट करते रहते हैं। वह इसे धर्म समझते हैं परन्तु इससे देश व समाज कमजोर होता है। विचार करने पर यह सिद्ध होता हैं कि संसार के सभी मनुष्यों का एक ही धर्म है और वह है **‘सत्य, सत्य सिद्धान्त, सत्य मान्यतायें, सत्य कर्म, सत्याचरण वा वेदाचरण’।** **धर्म एक होने का प्रमुख आधार यह है कि इस संसार का रचयिता एक ईश्वर है और उसकी उपासना उसके बताये वेद के आधार पर करना, वेदोक्त कर्म व आचरण करना व निषिद्ध कर्मों का त्याग ही धर्म है। एक राजा अपने देश व प्रजा के लिए दो व अधिक प्रकार के नियम नहीं बनाता। ईश्वर एक है अतः पूरी सृष्टि वा ब्रह्माण्ड के सभी मनुष्यों के लिए उसके नियम वा धर्म भी एक ही हो सकते हैं, भिन्न भिन्न नहीं।** सभी मनुष्यों को वेद व वैदिक साहित्य के आधार पर ईश्वर के नियमों की खोज कर उसी का आचरण करना चाहिये और अज्ञान, अन्धविश्वासों व स्वार्थी गुरुओं से बचकर शोषण से बचना चाहिये। यदि सत्य धर्म का आचरण नहीं करेंगे तो कर्म फल की व्यवस्था के अनुसार हमारी अवनति होकर हमें जन्म-जन्मान्तर में अनेक प्रकार के दुःखों की प्राप्ति हो सकती है। संसार के सभी मनुष्यों के लिए ईश्वर निर्मित गायत्री मन्त्र स्तुति-प्रार्थना-उपासना का एक श्रेष्ठ मन्त्र है। सभी को प्रातः व सायं अन्य धार्मिक कृत्य करने के साथ इसका भी अर्थ सहित पाठ व जप करना चाहिये जिससे अनेक प्रकार के लाभ हो सकते हैं। गायत्री मन्त्र है- **‘ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रयोदयात्।‘** अर्थात् **हे ओ३म् नामी परमेश्वर ! आप मेरे प्राणों के भी प्राण हैं, दुःखनाशक है व सुखस्वरूप हैं। हम आपके ग्रहण करने योग्य सकल जगत् के उत्पादक स्वरूप व विशुद्ध तेज को अपने भीतर जीवात्मा में धारण करें। हे प्रभु ! आप हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में चलने की प्रेरणा करें। यही आपसे हमारी विनती है।** इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**